तेरहवाँ अध्याय
अंतर्ज्ञानी श्री साई बाबा

सम्पूर्ण विश्व चमत्कारों से भरा हुआ है। हिंदू शास्त्र के अनुसार चौरासी लाख योनियाँ है। देवता, देवदूत, असंख्य प्राणी पशु-पक्षी तथा मानव देहधारी जीवों में उनका वर्गीकरण किया गया है और ये सारे जीव अपने-अपने कर्मानुसार स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल, आकाश एवं सागर आदि स्थानों में व्याप्त है। धर्मशास्त्रो के अनुसार जीवों को उनके महान् पुण्य कर्मो के संचय के फलस्वरूप ही स्वर्ग-प्राप्ति होती है घोर पाप कर्मो के संचय के फलस्वरूप ही स्वर्ग-प्राप्ति होती है और घोर पाप कर्मो के परिणामस्वरूप ही वे नरक में जाते है। पुण्य तथा पाप सम मात्रा में होने से जीवों को मनुष्य देह धारण करनी पडती है। मनुष्य जन्ममे जीवोंको अपनी उन्नति या अवनती करनेका पुर्ण अवसरप्राप्त होता है। जन्म और मृत्यू के चक्कर से मुक्त होकर आत्मा के सत्य स्वरूप का ज्ञान होना मनुष्य देह का अत्यन्त उत्तम श्रेणीय उच्च कोटी का ज्ञान है। मनुष्य देह धारण करने के बाद उसी परम ज्ञान की प्राप्ति जीवन की सबसे बडी आकांक्षा हो सकती है। इसी आकांक्षा का पूर्ण करने के लिए सद्गुरू की बडी आवश्यकता होती है। ब्रम्ह-ज्ञान कराने वाले सद्गुरू को इसी कारण शास्त्रो ने प्रत्यक्ष ब्रम्ह की उपमा दी है।

विश्व के सभी प्राणियों मे भूख, निद्रा, भय तथा मैथुन, ये चार सहज स्वभावगत प्रवृत्तियाँ अवश्य देखने मे आती है। पंरतु मनुष्यों को विधाता ने इन चारों प्रवृत्तियों के अतिरिक्त एक अन्य महत्त्वपूर्ण वरदान भी प्रदान किया है। वह है बुद्धि-ज्ञान या विवेक की शक्ति। इस शक्ति का सामर्थ्य इतना प्रभावशाली तथा महान है कि इसके बल पर मानव को सम्पूर्ण विश्व में श्रेष्ठ पद प्राप्त हो चुका है। इतना ही नही, कभी कभी तो स्वर्ग में वास करने वाले

देवताओं को भी मानवों से ईर्ष्या होने लगती है और वे निजी ज्ञान में वृद्धि करने के उद्देश्य से पुन:पुन: इस भूतल पर गुरू के रूप में मानव देह में जन्म लेने का प्रयत्न करते है।

मनुष्य जन्म अत्यन्त अल्प व नाशवान है। वह संकटो तथा दु:खों से भरा हुआ है। फिर भी परमात्मा ने मानवीय प्राणियों को बुद्धि प्रदान की है। इस बुद्धि के बल पर वह विचार कर सकता है। ज्ञान प्राप्त कर सकता है। शरीर को कोई चाहे कितना भी आराम क्यों न पहूँचाये, पर, इससे तो सुख की तिल भर प्राप्ति होती नही। जब मनुष्य को अपने चारों और फैले हुए मायाजाल में अधिकाधिक फँसते जाने का सच्चा अनुभव होता है और भारी आघात पहूँचने पर जब उसकी मोह-निद्रा टूटती है, तब वह अमर ज्ञान, आत्मा की अलौकिक अनुभूति प्राप्त करने के लिए अभ्यास करना आरम्भ करता है। साधना-पथ पर अंत में योग्य गुरू का साक्षात्कार होने पर वह मोक्ष पद तक भी पहूँच जाता है। श्री सद्गुरू साई महाराज सदैव अपने भक्तों से कहा करते थे-''कभी भी प्राप्त न होने वाला यह मनुष्य-जन्म विषयोपभोगों के चक्कर में व्यर्थ ही नष्ट न करो। जो बात आपकी समझ के बाहर है, वह मुझसे पूछिये। आपकी सेवा के लिए, आपका अध्यात्मिक स्तर ऊँचा करने के लिए ही मुझे परमेश्वर ने यहाँ भेजा है। केवल आपके लिए ही मेरा जीवन है। आपका उद्धार करना ही परमेश्वर के इस सेवक का कर्तव्य है। आपको भक्ति-मार्ग का उपदेश करते हुए मेरे हाथों से जन-सेवा का अनमोल कार्य भी होता रहता है। इस संसार में कोई अमर नही है। हर एक मनुष्य को एक-न-एक दिन मरना ही है। यह मृत्यू का भूत निरंतर अपनी आँखो के सामने रखो, ताकि कम-से-कम उसके भय से आपको परमात्मा का स्मरण होता रहेगा और आपको सदैव इस बात की चिंता रहेगी कि इस जन्म में कुछ-न-कुछ सत्कर्म अवश्य करना चाहिए।''

परमेश्वर प्राप्ति के अनन्त मार्ग है। परंतु सबसे सरल तथा सुलभ मार्ग

कोई है तो वह है गुरू-कृपा। किसी योग्य सद्गुरू की कृपा प्राप्त होना भी पूर्व जन्म के पुण्य का ही फल समझना चाहिए। भक्त के मन में जब भक्ति की प्रखर ज्वाला धधकती है। तब उसे उचित मार्ग-दर्शन करने कि लिए अकस्मात श्री साईनाथ जैसा सद्गुरू संयोगवश उपलब्ध हो जाता है। भक्त लोग इसी प्रकार केवल प्रारब्धानुसार श्री साई महाराज के निकट एकत्रित होने लगे। उनमें से कुछ भक्तों पर श्री बाबा का आरम्भ से ही स्नेह रहा। ऐसे भाग्यशाली लोगों में तात्या कोते पाटील तथा म्हालसापति की प्रमुख स्थान था। श्री साई महाराज के हृदय में इन दोनों के लिये इतना स्नेह था कि रात को ये दोनों भी नित्य श्री बाबा के साथ द्वारकामाई में ही शयन करते थे। द्वारकामाई में क्रमशः पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर दिशा में अपने-अपने सिर रख कर ये तीनों नित्य सो जाते थे। बीच में इन तीनों के पैर एक -दूसरे के पैरो से स्पर्श करते थे। मध्य रात्रि तक तिनों मे गप-शप होती रहती थी। यदि तीनों में से किसी पर भी नींद अपना प्रभाव जमाती तो शेष दो उसे जगाने का प्रयत्न करते। स्वयं श्री बाबा को नींद कम ही आती थी और वे दूसरों को भी सोने नही देते थे। तात्या पाटील को हिला-हिलाकर और उनका सिर दबा-दबा कर श्री बाबा उन्हे जगाया करते थे तो दुसरी ओर वे म्हालसापति के पैर अपनी ओर खींच कर और स्नेह से उनकी पीठ पर थपकियाँ मारकर उन्हें जगाने के लिए विवश कर देते थे। इन तीनों आदमियों का सोने का यह विचित्र क्रम चौदह साल तक अबाध गति से चला रहा। श्री बाबा के स्नेह वश तात्या पाटील और म्हालसापति दोनो ने ही अपने सांसारिक प्रपंच तथा घर-बार से लगभग संबंध विच्छेद कर लिया था। परंतु अपने पिता का स्वर्गवासहोने पर अपने कंधे पर आ पडे दायित्व को समझ कर केवल विवशतावश तात्या पाटील को द्वारकामाई छोड कर अंत में अपने घर जाना पडा। परंतु म्हालसापति अंत तक श्री साई महाराज के साथ रहे।

राहाता गाँव के निवासी चंद्रभान (मारवाडी) पर भी श्री बाबा की इसी

प्रकार कृपा-दृष्टि रहा। बडे सेठ की मृत्यू के पश्चात खुशालचंद नामक उनके भतीजे को भी साई महाराज का वैसा ही स्नेह प्राप्त होता रहा। परम क्रोधावस्था में भी वे खुशालचंद का स्मरण करते थे और सदैव उसकी देखभाल करते थे। खुशालचंद भी श्री बाबा का उचित आदर-सत्कार किया करता था। एक बार जब श्री साई महाराज राहाता गाँव गये थे तो सब ग्राम निवासियों ने बाजे-गाजे के साथ उनकी सवारी निकाली और बडी धूमधाम के साथ उन्हे सेठ जी के निवास स्थान पर ले गए, जहाँ उनकी विधिवत् पूजा-अर्चना की गई।

शिरडी गाँव राहाता और नीमगाँव, इन दो गाँवो के बिल्कुल मध्य में है। अपने सारे जीवन काल में श्री बाबा इन तीनों गाँवो के अतिरिक्त और कही भी नही गये। उन्होनें कभी किसी वाहन का भी उपयोग नही किया। रेलगाडी का तो श्री बाबा ने दर्शन तक भी नही किया था। फिर भी कोपगाँव आने-जाने वाली गाडियों की समय-तालिका उन्हें बराबर ज्ञात रहती थी। इस संबंध में अनेक भक्तों को विचित्र अनुभव हो चुके थे। कभी कभी तो भक्तों को ऐसा भ्रम होता था, मानो श्री बाबा की आज्ञा से ही रेल गाडियो का आना-जाना होता है।

श्री साई महाराज तो परमेश्वर के अवतार ही थे, फिर वे साधारण मनुष्य की भाँति भिक्षा माँगकर क्यों निर्वाह करते थे? भक्त के मन में ऐसा संशय होना स्वाभाविक है। हिंदू शास्त्र के अनुसार जिन व्यक्तियों ने संसार परित्याग कर संन्यास आश्रम स्वीकार किया है। जिनकी सभी इच्छाएँ तृप्त हो चुकी है, अथवा जिन्होंने घर बार छोड कर वानप्रस्थाश्रम का अवलंबन लिया है। ऐसी सभी विभूतियों को भिक्षा माँगने का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। साई महाराज एक विरक्त संन्यासी थे। हजारों भक्त उनकी सेवा में तत्पर रहते थे, तथापि उन्होंने जीवन पर्यंत मधुकरी द्वारा उदर-पूर्ति की। ऐसे महान योगियों की भिक्षा देने से पुण्य लाभ होता है। गृहस्थ-धर्म का वह एक आधार है और पवित्र कर्तव्य भी।

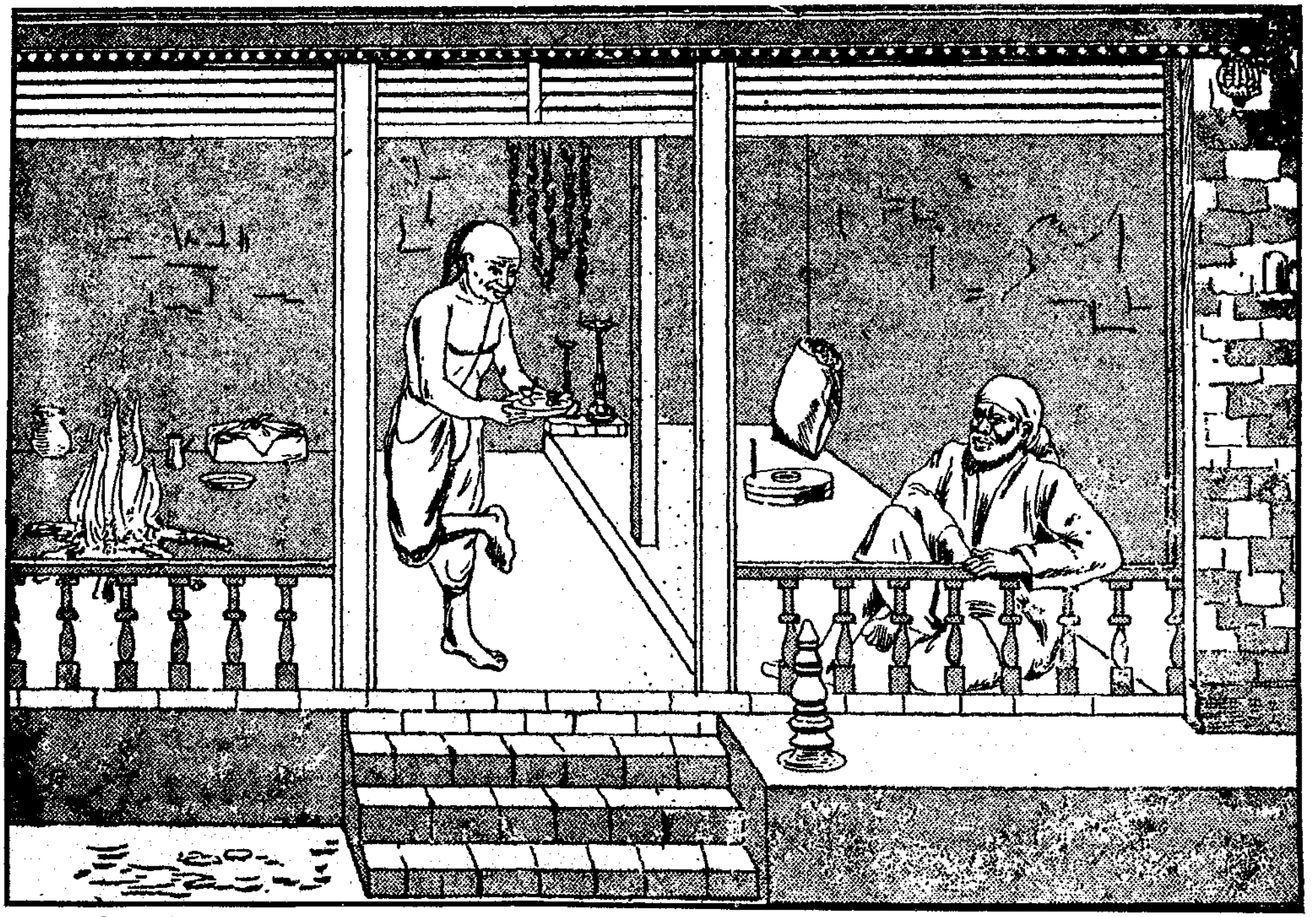

श्री साई महाराज का अनन्य भक्त मेघा एक टाँग पर खडे होकर श्री बाबा की आरती उतार रहा हैं ।

हमारा भोजन जब तैयार होता है तो हमारे हाथो से पाँच प्रकार की हिंसा होती है। चूल्हा, चक्की, झाडू, ओखली, और पानी का घडा इन पाँचो के नीचे अथवा इनके द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म जीवो के अनिवार्य रूप से हिंसा हो जाती है।

पकाए हुए अन्न पर इन पाँचो ही क्रियाओं के संस्कार पडना स्वाभाविक है। इस प्रकार दूषित हुए अन्न का शरीर और मन पर बुरा प्रभाव पडता है। श्री साई महाराज जैसे परम उत्कर्ष की भूमिका में पहूँचे हुए योगी यदि अपने मन और शरीर के शुद्धिकरण के लिए ऐसे अन्न का परित्याग कर भिक्षा-मार्ग का अवलंबन ग्रहण करे तो कोई आश्चर्य नही; क्योंकि भिक्षा द्वारा प्राप्त भोजन मे कोई दोष नहीं होता।

श्री साई महाराज को भिक्षा देने या पूजा के उपरान्त नैवेद्य अर्पण करने के संबंध में भक्त के मन में किसी प्रकार का विकल्प नही आना चाहिए, क्योंकि श्री बाबा भिक्षा या नैवेद्य ग्रहण करने की पूरी योग्यता रखेते थे। यदि कोई भक्त अपने नित्यनियम के अनुसार किसी दिन पूजा के समय नैवेद्य चढाना भूल जाता तो श्री साई महाराज स्वयं उस स्मरण दिलाते थे और अपना अधिकार जता कर प्रसाद ग्रहण करते थे। इस संबंध में श्री साई महाराज के एक भक्त श्री बाबा साहेब तर्खड के प्रत्यक्ष अनुभव से भक्तों का पूर्ण समाधान हो जायेगा।

श्री रामचंद्र आत्माराम तर्खड बंबई के एक उपनगर बांद्रा में रहते थे और वे ''प्रार्थना समाजी'' थे। उनकी पत्नी और पुत्र श्री साईनाथ महाराज के परम भक्तों में से थे। श्री बाबा में उनका दृढ विश्वास था। प्रतिदिन नियमपूर्वक श्री साई महाराज की पूजा कर उन्हें नैवेद्य

---

* गृहस्थ के लिए इन पाँच पापों से निवृत्ति के लिए पाँच यज्ञ बताये है। ब्रम्ह-यज्ञ, देव-यज्ञ, भूत-यज्ञ, पितृ-यज्ञ और नृ-यज्ञ। पर यह गृहस्थाश्रम में ही संभव है। संन्यासश्रम में नही।

चढाये बिना वे दोनों अन्न ग्रहण नहीं करते थे। एक बार तर्खड साहब का पुत्र अपनी माता के साथ श्री साई महराज के दर्शनार्थ शिरडी गया। प्रस्थान करने से पूर्व उन्होंने घर में श्री साईनाथ महाराज की पूजा-अर्चना करने का भार आपनें पिताजी को सौंप दिया। श्री बाबासाहेब पूजा करने के आदी नही थे; परंतु अपने पुत्र का भाव जानकर उन्होंने नित्य-नियमपूर्वक पूजा करना आरम्भ किया। एक दिन आधिक कार्य-व्यस्त होने के कारण श्री साईनाथ को नैवेद्य चढाए बिना वे दफ्तर चले गए। शाम को घर लौटने पर उन्होंने अपनी भूल के संबंध में पुत्र को विस्तारपूर्वक पत्र लिखकर शिरडी भेज दिया। इधर ठीक उसी दिन शिरडी में तर्खड साहब के पुत्र अपनी माता के साथ जब श्री साई महाराज की पूजा करने के लिए द्वारकामाई में पहूँचे तो उनकी ओर मंद मुस्कान से देखते हुए श्री बाबा बोल उठे, ''माँ, आज मुझे कुछ खाने को मिलेगा, इस आशा से बांद्रा पहुँचा; परंतु देखा तो किवाड बंद थे। मै वैसे ही अंदर घुस गया, पर आज तो भाऊ ने मुझे निराश किया। मुझे प्रसाद नहीं मिला और मै वैसे ही लौट आया।''

तर्खड साहब की पत्नी श्री बाबा के मुख से निकले हुए इन उद्‌गारों का कोई भी अर्थ नही समझ सकी पर उनके पुत्र ने सारी परिस्थिति का ठिक-ठिक अनुमान लगा लिया। उसे विश्वास हो गया कि आज उसके पिताजी से अवश्य कोई भूल हो गई होगी और उसने तुरंत ही श्री बाबा से क्षमा-याचना की। श्री बाबा ने भी उदार अंत:करण से उसे क्षमा कर दिया और उससे वहीं विधिपूर्वक पूजा स्वीकार की। तर्खडसाहब के पुत्र ने इस घटना का पूर्ण विवरण पत्र द्वारा अपने पिता को भेज दिया और दो दिनों के पश्चात श्री बाबासाहब का पत्र भी शिरडी आ पहूँचा। क्या इस घटना को केवल संयोग की बात कहने का कोई साहस कर सकता है? सत्य तो यह है की साई महाराज अंतर्ज्ञानी और उत्तम भूमिका तक पहूँचे हुए सद्‌गुरू थे।

भगवान श्री रामचंद्रजी ने शबरी के खाए हुए जुठे बेर प्रेम से स्वीकार

किये थे। भक्तों का भाव जानकर श्री साई महाराज भी प्रसाद-स्वरूप भेजी हुई छोटी-सी भेंट भी अत्यन्त प्रेम से स्वीकार करते थे। तर्खड साहब की पत्नी ने भी एक बार श्री बाबा को श्री पुरंदरे की पत्नी के साथ दो बैंगन भेजे और उससे एक बैगन का भुर्ता और दुसरे की कचरियाँ बना कर श्री बाबा के पास ले जाने की विनती की। शिरडी पहूँचने पर श्री पुरंदरे की पत्नी एक बैगन का भुर्ता बनाकर भोजन के समय श्री बाबा के पास ले गई। श्री बाबा ने बडे प्रेम से माँगकर भुर्ता स्वीकार किया और पूच्छा, ''हमारी बैगन की कचरियाँ कहाँ है?'' श्री बाबा की एक अन्य सेविका राधाकृष्णमाई कों चिंता हुई। बैंगन का मौसम न होने से बाजार में बैंगन मिलना असंभव था। अंत में वह श्री पुरंदरे की पत्नी के पास पहूँची और पूछताछ करने पर श्री पुरंदरे की पत्नी ने स्वीकार किया की बैगन का भुर्ता उसने ही बनाया था; परंतु बैगन की कचरियाँ वह केवल आलस्य के कारण नही बना पाई थी। उसने तुरंत ही तर्खड साहब की पत्नी द्वारा भेजे गए दूसरे बैगन की कचरियाँ तल कर श्री बाबा के पास भेज दी।

एक अन्य अवसर पर गोविंदा नामक एक लडका जब शिरडी जा रहा था तो तर्खड साहब की पत्नी ने जल्दी में नैवेद्य स्वरूप अर्पित किए हुए पेढों में से एक पेढा उठाकर गोविंदा के हाथ पर रखा और उससे विनती की कि वह पेडा वह याद से साई महाराज को दे दे। शिरडी पहूँच कर जब गोविंदा श्री बाबा के दर्शनार्थ द्वारकामाई में पहूँचा तो वह पेढे की बात बिल्कुल भूल गया और जडवत् बैठा रहा। श्री बाबा पर्याप्त समय तक मौन रहे और जब देखा कि गोविंदा कोई वस्तु अपने साथ नही लाया है तो उन्होंने उससे स्पष्ट पूछा, ''क्यों भाई, माई ने मुझे देने के लिए जो मिठाई दी थी, वह कहाँ है?'' सुनते ही गोविंदा दौडकर अपने निवासस्थान पर पहूँचा और श्रीमती तर्खड द्वारा भेजा हुआ पेढा लाकर श्री बाबा के हाथ पर रख दिया। श्री बाबा ने वह बासी पेढा एक ही ग्रास में अत्यन्त प्रेम से ग्रहण कर लिया। परमात्मा प्रेम का भूखा होता

है। श्री साई महाराज ने पेडे जेसी एक साधारण भेट आग्रहपूर्वक माँग कर यह सिद्ध कर दिया कि अपने भक्त के लिए उनके हृदय में कितनी अधिक ममता रहती थी।

श्री बाबा ने श्रीमती तर्खड को ऐसे अनेक दृष्टान्त देकर उन्हे सदुपदेश किया। एक बार जब वह शिरडी में वास कर रही थी. तो भोजन के समय एक कुत्ता उनके समीप आया और जोर-जोर से भौंकने लगा। श्रीमती तर्खड भोजन छोडकर उठी और रोटी का एक टुकडा उन्होंने कुत्ते को खिलाया। दोपहर के समय जब श्रीमती तर्खड श्री बाबा के दर्शनों के लिए द्वारकामाई में पहूँची तो मुस्कराते हुए श्री साई महाराज बोले, ''माँ, जब मैं भूख से व्याकुल हो उठा था तो तुम्हारे दिये हुए उस रोटी के टुकडे से मेरा पेट भर गया। मेरी अन्तरात्मा प्रसन्न हो उठी। अपना आचरण सदैव ऐसा ही रखो। अंधे, लूले, भूख से व्याकुल प्राणियों को पहले अन्न दिये बिना स्वयं कभी भोजन न करो। मेरे इन शब्दों पर विश्वास रखते हुए यदि अपना आचरण निर्धारित करोगी तो तुम्हें अवश्य ही सद्गति प्राप्त होगी।''

श्री साई महाराज के यह उद्गार सुनकर श्रीमती तर्खड असंमजस में पड गई। बडा साहस बटोर कर उन्होंने डरते हुए श्री बाबा से कहा, ''आज! प्रात:काल तो मैने आपको कुछ भी नैवेद्य अर्पण नही किया था।''

तब श्री बाबा ने प्रत्युत्तर दिया, ''आज प्रात: भोजन करते समय क्या तुमने एक कुत्ते को रोटी नहीं दी? मैं ही कुत्ते के रूप में वहाँ आया था। प्रत्येक प्राणी में परमेश्वर का अंश रहता है, इस तत्व का भली-भाँति स्मरण रखते हुए प्राणिमात्र के लिए भूतदया दिखाने का सदैव प्रयत्न करो।'' श्री साई महाराज का यह उत्तर सुनकर श्रीमती तर्खड हतबुद्धि रह गई। समय-समय पर श्री बाबा ने श्रीमती तर्खड की भाँति ही अन्य भक्तों को भी ऐसे उपदेश दिए थे। अपनी श्रेष्ठता का किंचित भी प्रदर्शन न करते हुए अत्यन्त निरभिमान हो श्री साई महाराज कहा करते थे, ''मैं तो गुलामों का भी गुलाम हूँ। मैं सभी लोगो

का अत्यन्त ऋणी हूँ। जब आप मेरे पास आते है, तो आपको जितनी प्रसन्नता होती है, उससे कई गुना अधिक प्रसन्नता तो मुझे अनुभव होती है। आप धनवान उपधिधारी, विद्वान, बडे ऊंचे कुलों में उत्पन्न हुए सच्चे पुण्यात्मा हैं। आपके सम्मुख तो मैं एक अत्यन्त साधारण भिकारी हूँ, छोटा-सा जीव हूँ। मेरे दर्शनों के लिए यहाँ आकर आप लोग ही मुझ पर अनंत उपकार कर रहे है। इन उपकारों का ऋण मैं कभी भी चुका नही सकता।''

श्री साई महाराज के ये उद्‌गार उनकी नम्रता और विशाल हृदयता के द्योतक हैं। श्री साई महाराज जैसी योग्यता के सत्पुरूष बिरले ही होते है।

श्री साई का सब व्यवहार एक साधारण मनुष्य की भाँति होता था। उनके हृदय में किसी वस्तू की वासना नहीं होती थी। भक्तों की दी हुई कोई भी वस्तु वे प्रसन्नता से खाते थे; परंतु किसी भी वस्तु की रूचि का उन्हें ज्ञान नहीं होता था। प्रत्यक्षत: तो वे आँखे खुली रखते हुए किसी भी सुंदर वस्तु की ओर निहारते प्रतीत होते थे। पंरतु उसी क्षण उनकी अंतर्दृष्टि किसी दुसरे ही अदृश्य स्थान पर एकाग्र, स्थिर होती थी। क्रोध, प्रेम तथा अनुराग-इन सभी मनोंभावों को योग-बल से अपने अधीन रखकर वे बजरंगबली के सदृश्य सदैव स्थितप्रज्ञ अवस्था में रहते थे। श्री साई महाराज कभी-कभी अत्यन्त क्रुद्ध प्रतीत होते थे; परंतु प्रसंग विशेष पर वे गौ की भाँति इतने नम्र तथा मृदू बनते थे की देखनेवाले को यह भ्रम होता था कि जिन श्री साई महाराज से वह परिचित हैं, वह यही है या कोई अन्य।

नानावल्ली नामक एक विचित्र और चंचल स्वभाव का मनुष्य श्री साई महाराज की सेवा-चाकरी करने के उद्देश्य से शिरडी में रहता था। एक बार पागलपन की लहर में नानावल्ली ने श्री बाबा को अपने आसन से खडे होने की आज्ञा दी। श्री साई महाराज चुपके से उठ गये और नानावल्ली को अपने पवित्र आसन पर बैठने की पूर्ण स्वतंत्रता दे दी। थोडी देर बाद जब नानावल्ली का पागलपन समाप्त हुआ तो वह स्वयं ही श्री साई बाबा के

आसन से उठ खडा हुआ और उनके चरणों में सिर झुकाकर उनक शरण ली। यद्यपि नानावल्ली ने द्वारकामाई में सबके समक्ष श्री बाबा को उत्तेजित करने वाला अपमानजनक कृत्य किया, फिर भी बाबा के मुख से एक भी संतापयुक्त शब्द नहीं निकला। इस नानावल्ली ने श्री साई महाराज को कई बार दु:ख पहूंचाया था। वह कभी कभी एक अत्यन्त कर्कशा स्त्री की भाँति श्री बाबा को सताता था। परंतु श्री बाबा तो सारा कष्ट और उद्वेग सहन करके असाधारण सहिष्णुता का परिचय देते थे। वैसे नानावल्ली का भी श्री बाबा से निरपेक्ष प्रेम था। श्री साई महाराज की समाधि के पश्चात् ठीक तेरहवें दिन नानावल्ली ने भी अपनी जीवन-यात्रा समाप्त की और श्री बाबा के पीछे-पीछे वह भी चला गया।

श्री साई महाराज के दैनिक कार्यक्रम की अत्यन्त साधारण बात से भी उनकी प्रगल्भ बुद्धिमता तथा कौशल का पूर्ण परिचय मिलता था। उनका प्रत्येक आचरण भक्तों के हित के लिए होता था। पर अज्ञानी मनुष्य उनके आचरण का अर्थ नही समझ सकते थे। शीव के श्री नानासाहेब पिटकर ने भी अपना एक छोटा-सा अनुभव बतलाया है। जब वे अपने मित्रों सहित शिरडी में श्री साई महाराज के दर्शनों के लिए पहूँचे तो उन्हें देखकर श्री बाबा अत्यन्त क्रोधित हूए और उनसे तुरन्त लौट जाने के लिए कहने लगे। अपने हाथ को बडे आवेश से घुमा कर वे गरजते रहे, ''चले जाओ, अभी इसी क्षण चले जाओ।'' नानासाहेब असमंजस में पड गए और श्री बाबा के उस अप्रत्याक्षित आचरण का कोई भी अर्थ उनकी समझ में नही आया। साहस बाँध कर वे वहीं डटकर बैठे रहे। फिर दीक्षितसाहब ने उन्हें श्री बाबा के उस आवेशपूर्ण आदेश का अर्थ समझाया। उस समय गाँव के आस-पास प्लेग का प्रकोप था और इस बात का भय था कि कही शिरडी में भी रोग न फैल जाए। इसीलिये वे बाहर गाँव से अनजाने आये हुए भक्तों को उस भयानक महामारी से बचाने

के लिए ही शिरडी से तुरन्त लौट जाने का परामर्श देते थे।